अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

पत्रांक : मेमो / अ0बौ0के0 / 10 / 2020 **दिनांक 24.04.2020**

क्रोध के गहरे पानी में इतने दूर तक नहीं जाना चाहिए कि व्यक्ति उसमें डूब जाय

पिछले प्रबोधन में उस 'निराशा'; जो हमें, जिस जीवन से परिचित है उसकी वास्तविकता से परिचित कराके, योग की तरफ, अनुशासन की तरफ प्रेरित करती है, की उस निराशा से, जो सामान्य सांसारिक उपलब्धियों को न प्राप्त कर पाने का परिणाम है, से भिन्नता को स्पष्ट किया गया। सामान्य मनोविज्ञान जहाँ द्वितीय प्रकार की निराशा से उत्पन्न मानसिक एवं सामाजिक समस्याओं का निदान करने में उपयोगी है और हमें अपने सामान्य जीवन से समायोजन स्थापित करने में सहायता दे सकती है लेकिन वह इस तथ्य की विवेचना करने में असमर्थ है कि क्यों हमें सांसरिक उपलब्धियों के पश्चात् भी कहीं न कहीं यह बोध बना रहता है कि अभी भी उपलब्धि पूर्ण नहीं हुई है। इसके कारण की विवेचना में पूरब की जीवन दृष्टि सहायक हो सकती है। पूर्व के प्रबोधन में यदि समुराई योद्धा के कहानी का स्मरण करें तो स्पष्ट है कि उस उदाहरण में *योद्धा के माध्यम से किसी भी ऐसे व्यक्ति, जो भावना के अतिरेक की अवस्था में आ जाता है, की उद्विग्न मानसिक स्थिति तथा उस उद्विग्नता को दूसरे पक्ष से सहारा न मिल पाने के कारण स्वतः शमन हो जाने का उल्लेख है।* झेन गुरु केन्द्र को उपलब्ध गुरु है इसलिए उसकी चेतना हत्या को उद्यत योद्धा के समक्ष भी निष्कम्प रहती है और योद्धा को तत्क्षण यह बोध करा देती है कि भावना का अतिरेक ही नरक है परिणामतः उसकी चेतना का शमन होने से उसका गुरु के चरणों में तलवार रख देना स्वर्ग है। ***अतः स्वर्ग या नरक कोई वस्तुनिष्ठ स्थिति न हो आत्मनिष्ठ अवस्था के सूचक होते है।***

भावना के वशीभूत एवं नियंत्रण में हम सदैव प्रतिक्रिया करते है न कि क्रिया जो हमें मुक्त करने के स्थान पर बांधती है। आवेग का नियंत्रण आधारभूत मनोवैज्ञानिक कौशल है। यही समस्त भावनात्मक आत्मनियंत्रण का मूल है क्योंकि समस्त भावनाएं स्वरुपत एक या अनेक अन्य आवेग के वशीभूत हमारे व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करने लगती है। हमारा कोई भी व्यवहार आवेग के वशीभूत नहीं होना चाहिये, लेकिन जब भी हमें ऐसा लगे तो जो कार्य हम उस समय (आवेग के वशीभूत) करना चाहते है यह जानते हुए कि उसे नहीं करना चाहिए, को करने से बचना चाहिये। ***आवेग कोई विचार या भावना या दोनों ही हो सकता है लेकिन हमें यह अन्तर करना होगा कि 'हम' वस्तुतः कोई विचार या भावना नहीं है।***

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

हमें 'आवेग' तथा उसके वशीभूत हो हमारा जो अंश प्रतिक्रिया करने का निर्णय लेता है, के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होना चाहिये कि दोनों भिन्न है।

आवेग एवं 'हमारा' वह अंश जो व्यवहार के ढंग का निर्णय लेता है, दोनों ही चेतना में विद्यमान माने जा सकते है। सामान्यतः अधिकांश व्यक्तियों के उपर्युक्त दोनों पक्षों में कुछ सीमा तक अतिव्यापन (overlapping) होता है इसलिए कभी–कभी वे आवेग के प्रवाह में बह जाते है तो कभी उसका प्रतिरोध भी करने में सफल हो जाते है। लेकिन जिस व्यक्ति में नियंत्रण–अनुशासन का अभाव होता है वह प्रत्येक आवेश के वशीभूत हो प्रतिक्रिया (व्यवहार) करने को विवश होता है तथा वह यह जान ही नहीं पाता है कि वह और आवेग दोनों भिन्न है। ***आवेग निर्णय के पक्ष को पूर्णतया व्याप्त कर लेता है।***

इसके विपरीत अनुशासित व्यक्ति की चेतना का वह अंश जो किसी आवेग के संदर्भ में प्रतिक्रिया (व्यवहार) का निर्णय लेता है उससे पूर्णतया अलग रहता है, इसलिए वह उसका द्रष्टा हो जाता है, वह आवेग के प्रति सजग, पूरे होशोहवास में रहता है ***वह किसी निश्चित ढ़ग से प्रतिक्रिया (व्यवहार) करने को विवश नहीं रहता दूसरे शब्दों में उसकी क्रिया का बटन उसके हाथ में रहता है न कि अन्यत्र।***

यहीं कारण है कि योग 'अनुशासन' एवं 'साक्षी' भाव से ही प्रारम्भ करता है जिसकी विस्तृत विवेचना पिछले प्रबोधनों में हो चुकी है। जब तक 'साक्षी स्वयं में स्थापित नही होता' तब तक 'मन की वृत्तियों के साथ' उसका ''तादात्म्य'' रहता है। जब हम वृत्तियों के वशीभूत रहते है तो इसका स्पष्ट प्रभाव हमारी मानसिकता क्षमता पर पड़ता है, जिसे संज्ञानात्मक वैज्ञानिक 'कार्य स्मृति' की संज्ञा से अभिहित करते है। इससें प्रस्तुत कार्य या विषय से सम्बन्धित समस्त सूचनाओं पर हमारी पकड़ की क्षमता प्रभावित हो जाती है। मन हमारी दासता का भी स्रोत हो सकता है और मुक्ति का भी। जो मन हमें संसार की तरफ ले जा सकता है वही उससे बाहर भी ले जा सकता है। मन नरक का भी द्वार हो जाता है और स्वर्ग का द्वारा भी हो सकता है बशर्ते हम उसका उपयोग कैसे करते है। मन, शत्रु है या मित्र, इसका निर्धारण हम ही करते है। मन यदि हमारा मालिक है, स्वामी बन गया है तो उससे बड़ा कोई शत्रु नही, लेकिन यदि वह दास है तो उससे बड़ा हितैषी, कोई मित्र नहीं। मन रुपी उपकरण का कैसा उपयोग होगा यह हम पर निर्भर होता है। योग का यही प्रयास है कि वह हमें मन के सदुपयोग की प्रविधि से परिचित करा दें।

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

योग हमें 'मन' को कुशलतापूर्वक उपयोग करने की क्षमता से युक्त करता है। पतंजलि हमें क्रम से 'मन' की समझ तक ले जाते है कि इसमें कितनी वृत्तियाँ है और हम उनका कुशलता एवं सजगतापूर्वक कैसे उपयोग करकें स्वयं 'मन' के पार जा सकते है– अपने 'घर' में प्रविष्ट हो सकते है। मन मात्र एक उपकरण है, हमारे हाथ एवं पैर के समान लेकिन जहाँ इनका नियंत्रण हमारे हाथ में होता है वहीं मन हमारे नियंत्रण को स्वीकार नहीं करता है। हमारे पैर, हाथ, अपने आप से यदि गतिशील हो जाय तो एक प्रकार से शारीरिक अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। मन के साथ ऐसा ही हुआ है कि वह हमारे नियंत्रण से बाहर ही रहता है जिससे हमारे मानसिक जीवन में एक प्रकार से अव्यवस्था दिखाई देती है। हम सोचना नहीं चाहते लेकिन मन सोचता ही चला जाता है, कुछ अधिक ही तीव्रता के साथ। मन पूर्णतः हमारे नियंत्रण से बाहर हो हमें ही एक स्वामी के समान अधीन कर चुका है।

पतंजलि जब 'मन की समाप्ति' की बात करते है तो उसका निहितार्थ स्वामी के रुप में उसकी समाप्ति से है न कि एक सशक्त सहयोगी उपकरण के रुप में; क्योंकि बुद्ध पुरुष ही नहीं पतंजलि भी मन का उपयोग करते है क्योकि कोई भी चेतन मानवीय व्यवहार इसकी अनुपस्थिति में सम्भव ही नही है। योग मन के स्वामित्व के निषेध की घोषणा है उसे सक्षम एवं कुशल उपकरण के रुप में रुपान्तरण की। पतंजलि मन की संरचना की विवेचना ''वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टा'' सूत्र से करते हुए कहते है कि मन की पाँच वृत्तियाँ है जो क्लेश एवं अक्लेश दोनों का मार्ग हो सकती है। ये पाँच वृतियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति हैः ''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'।

कैसे यह वृत्तियाँ क्लेश या अक्लेश दोनों की हेतु बनती है। अगले प्रबोधन में।

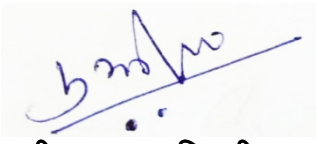

सुशील कुमार तिवारी
(विशेष कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।